ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 265-266
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

जातियों का राजनीतिकरण

डॉ0 प्रमोद कुमार

असि0 प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष– हिंदी विभाग, श्री चित्रगुप्त (पी०जी०) कॉलेज मैनपुरी (उ0प्र0) भारत

Received-16.06.2023, Revised-22.06.2023, Accepted-27.06.2023 E-mail: pvpramod6@gmail.com

सारांश: *भारत में औपनिवेशिक दौर में और उसके बाद के शुरूआती दशकों में जाति को आधार बनाकर परिवर्तनकारी राजनीति करने की कोशिशें हुई। अम्बेडकर ने दलितों में राजनीतिक चेतना भरने की पुरजोर कोशिश की। दक्षिण भारत में रामावमी नायकर पेरियार के नेतृत्व में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन चला। इसी तरह, राम मनोहर लोहिया ने पिछड़ों की राजनीतिक गोलबंदी करके कांग्रेस और उँची जातियों के वर्चस्व को तोड़नें की कोशिश की। लेकिन इसके बावजूद सामान्यतः जाति और राजनीति के आपसी संबंधों को संदेह की नजर से देखा जाता रहा है। राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हुए अक्सर इसे हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए खतरा माना जाता है। आमतौर पर लोकतांत्रिक राजनीति को आधुनिकता और जाति को परंपरा का प्रतीक मानते हुए दोनों के विरोधाभासपूर्ण संबंधों पर जोर देने की प्रवृत्ति रही है। अकादमिक स्तर पर राजनीति में जाति की भूमिका को समझने की कोशिश सन् साठ के दशक में शुरु हुई। 1964 में लिखी अपनी किताब में मॉरिस जोन्स ने यह माना कि स्वतंत्र भारत की नई परिस्थितियों के कारण राजनीति जाति के लिए तथा जाति राजनीति के लिए महत्वपूर्ण हो गई।1 इसी तरह, रूडोल्फ द्वय2 ने 1967 में प्रकाशित अपनी किताब में राजनीति में जाति की भूमिका को परंपरा के आधुनिकीकरण के रूप में समझने पर जोर दिया। अर्थात् इन्होंने यह माना कि आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में जाति एक पारंपरिक संरचना है, लेकिन आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में इसका आधुनिकीकरण हो गया है। इन्होंने बताया कि राजनीति में भागीदारी के जरिए जाति का लोकतांत्रिक पुनर्जन्म हुआ है। लेकिन भारत की राजनीति में जाति की भूमिका और इसके प्रभावों को बताने में रजनी कोठारी ने सबसे महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1970 में कोठारी की किताब पॉलिटिक्स इन इंडिया प्रकाशित हुई। इसी वर्ष कोठारी द्वारा संपादित किताब कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स का भी प्रकाशन हुआ। कोठारी ने अद्भुत प्रतिभा के साथ यह दिखाया कि जातियाँ आधुनिक राजनीति में भागीदारी करने के दौरान किस तरह समाज परिवर्तन की प्रक्रिया को अंजाम दे रही है। कोठारी से पहले के लेखन में या तो जाति और राजनीति को परंपरा और आधुनिकता के अलग–अलग खानों में रखा गया, या फिर बहुत ही सरलीकृत निष्कर्ष निकाले गए। अपने कुछ पूर्ववर्ती लेखकों द्वारा 'जाति के लोकतांत्रिक पुनर्जन्म' की घोषणा को कोठारी ने अतिसरलीकरण की संज्ञा दी। कोठारी ने अपने विश्लेषण में जाति और राजनीति के पारस्परिक प्रभाव की गहराई से पड़ताल की।*

कुंजीभूत शब्द– औपनिवेशक, परिवर्तनकारी, राजनीतिक चेतना, पूरजोर कोशिश, आन्दोलन, गोलबंदी, आधुनिकता।

कोठारी के अनुसार यह एक तथ्य है कि राजनीति गोलबंदी करने के लिए और अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए पहले से मौजूद और उभरती हुई निष्ठाओं का इस्तेमाल करती है। खासतौर पर जनआधारित राजनीति में जनसमर्थन संगठनों के जरिए व्यक्त होता है। संगठनों के जरिए ही विशाल जनसमूह गोलबंद होते हैं। इसका सीधा मतलब यह है कि जिस समाज में जातिगत संरचनाओं के माध्यम से संगठन और गोलबंदी की सुविधा हो, और जिस समाज में जनगण जातियों के रूप में संगठित हों, वहाँ राजनीति में जाति आधारित गोलबंदी होना स्वाभाविक है। एक सामाजिक संस्था के रूप में जाति की जड़ें हमारे समाज में बहुत गहरी है। एक व्यक्ति सामान्यतः अपनी जाति की सीमाओं के भीतर जन्म लेता है, जीवन गुजारता है और इसी सीमा में उसकी मौत भी होती है। दूसरे व्यावसायिक संगठन इतने सशक्त नहीं हैं कि वे व्यक्ति को सुरक्षा, पहचान, सहभागिता और स्वहित का बोध प्रदान करें। हमें ध्यान रखना चाहिए कि राजनीतिक और विकास संबंधी संस्थाएं कहीं भी शून्य में सक्रिय नहीं रहतीं। इन्हें समाज में अपना आधार तलाश करना पड़ता है। लोकतांत्रिक शासन प्रक्रिया में लोग अपने शासकों का चुनाव करते हैं। अपने प्रतिनिधियों को चुनते हुए वे अपनी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को अभिव्यक्त करते हैं। आमतौर पर, ये अपेक्षाएँ जाति जैसी नजदीकी और अस्मिता से जुड़ी व्यवस्था के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं।

कोठारी मानते हैं कि इस रूप में लोकतांत्रिक राजनीति में जाति और राजनीति एक–दूसरे के नजदीक आती हैं। इस प्रक्रिया में दोनों का ही रूप बदला है। अपने संगठन के दायरे में लाकर राजनीति ने जाति से अपनी अभिव्यक्ति के लिए सामग्री प्राप्त की है और इसे अपनी योग्यतानुसार ढाल लिया है। उधर जाति समूहों ने राजनीति को अपनी गतिविधि का केन्द्र बनाकर अस्मिता का दावा पेश करने और राज्य–तंत्र में अपनी स्थिति सुधारने का मौका हासिल किया।5 वास्तव में, लोकतांत्रिक राजनीति और आधुनिक औद्योगिक विकास ने सत्ता पर अपना कब्जा कर अपनी स्थिति सुधारने के लिए जाति समूहों को प्रेरित किया। जातियों ने चुनावी राजनीति और दलगत राजनीति से खुद को जोड़ दिया है। परिणामस्वरूप गतिशीलता के अधिक सामूहिक और सहभागी रूप सामने आए हैं और विभिन्न स्तरों के बीच बेहतर समन्वय हुआ है। राजनीति की निर्णयकारी प्रक्रिया में अधिकाधिक तबके भागीदारी करते जा रहे हैं। यह प्रक्रिया विभिन्न जातियों को अपना अंग बनाती जा रही है। अधिकांश क्षेत्रों में अंग्रेजी शिक्षा को सबसे पहले द्विजों ने स्वीकार किया था। इसलिए राजनीतिक और प्रशासनिक

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

सत्ता से सबसे पहले उन्हें ही फायदा मिला। लेकिन धीरे–धीरे मताधिकार और दलीय प्रणाली का विस्तार हुआ और अन्य तबके भी उसके दायरे में आये। औपनिवेशिक और उत्तर–औपनिवेशिक राज्य द्वारा अपने लिए समर्थन और वैधता पाने के लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों की श्रेणियों का निर्माण किया गया और आरक्षण जैसे कदमों को अपनाया गया। इसने जातियों के राजनीतिकरण को बढ़ाया और इन्हें राजनीतिक चेतना तथा सत्ता की आकांक्षा से भरा। लोकतांत्रिक राजनीति ने विभिन्न जातियों के बीच गठबंधन की प्रवृति को बढ़ाया। लोकतांत्रिक राजनीति के कारण नयी उपलब्धियों की संभावनाएं जगी। इन संभावनाओं के साथ यह बात भी जुड़ी हुई थी कि केवल जातिगत संबंध स्थायी समर्थन का आधार बनाने के लिए नाकाफी ही नहीं वरन् हानिकारक भी होते हैं। इसका कारण यह है सिर्फ एक जाति के समर्थन के भरोसे सत्ता हासिल करना संभव नहीं है, इसके लिए दूसरी जातियों और समुदायों के समर्थन की जरूरत भी पड़ती है। दूसरे, किसी भी लोकतांत्रिक रूप से चुनी हुई सरकार की वैधता इस पर निर्भर होती है कि उसे समाज में कितनी विविध जातियों और समुदायों का समर्थन हासिल है।

कोठारी ने साफ तौर पर यह रेखांकित किया है कि सत्ता पर कब्जा करने के लिए विभिन्न जातियों के बीच बनने वाले गठबंधन ने पारंपरिक रूप से कर्मकांड पर आधारित या ऊँच–नीच कायम रखने वाली जाति–व्यवस्था को समस्तरीय एवं प्रतियोगी जाति–व्यवस्था में तब्दील कर दिया है। ऐसे में पिछड़ी और दलित जातियों ने भी सत्ता पर समान रूप से अपनी दावेदारी पेश की है और वे सत्ता पर अपना कब्जा करने में कामयाब भी रही हैं। जातियाँ संगठन के नये लक्ष्यों के लिए खुले सेकुलर रूपों को अपनाने से नहीं हिचकतीं। जाति–सभाएँ या जाति–संघ भी इन्हीं रूपों में से एक हैं। आधुनिक जाति सभाओं और पारम्परिक जाति पंचायतों में काफी अन्तर हैं। एक जाति पंचायत एक गांव की सीमाओं से बंधी होती है। लेकिन जाति सभा व्यापक क्षेत्र में फैली जाति का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है। कई बार एक जाति सभा या संघ में कई जातियाँ शामिल होती हैं। ये अब तक राजनीतिक प्रक्रियाओं से अछूते थे। अपने हितों को पूरा होने की आशा में इन्होंने चुनावी राजनीति में भाग लेना शुरू किया। दूसरा, जाति के सदस्यों का विभिन्न दलों के बीच विभाजन हुआ, जिससे जाति की पकड़ कमजोर हुई। तीसरा, संख्यात्मक रूप से बड़ी जातियों ने संसद और विधानमंडलों में प्रतिनिधित्व प्राप्त किया। इससे पारम्परिक रूप से जो प्रभुत्वशाली जातियाँ थीं, उनकी स्थिति कमजोर हुई।

स्पष्टतः राजनीति ने जाति को अपने आधार के रूप में प्रयुक्त किया है और इस तरह इसे पद–सोपान या ऊँच–नीच पर आधारित ऊर्ध्व या पिरामिड की संरचना जैसी व्यवस्था से सत्ता के लिए प्रतियोगिता करने वाली क्षैतिज यार समस्तरीय समूहों की व्यवस्था में बदला है। फिर भी, बहुत से विचारकों का मानना है कि चुनाव प्रणाली ने जाति अस्मिताओं को नवजीवन प्रदान कर दिया है। कोठारी मानते हैं कि यह एक सही समझ है, लेकिन इससे आमतौर पर गलत निष्कर्ष निकाले जाते हैं। दरअसल, राजनीतिक सत्ता के एकमात्र आधार के रूप में जाति की सत्ता का क्षय हो जाने के कारण जातीय गणित का महत्व बढ़ गया है। जाति के सदस्यों में किसी एक दल को वोट देने की प्रवृत्ति होती है, किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि एक जाति के सभी सदस्य एकरूप होकर मतदान करते हैं। उम्मीदवारों की जाति के साथ दूसरे कारक भी महत्वपूर्ण हैं, जो मतदाताओं की मतदान प्रवृति का निर्धारण करते हैं। समझने की बात यह है कि जातीय गणित की उस समय जरूरत नहीं थी, जब कुछ जातियों के लोग ही सत्ता के दावेदार थे। जाति अपनी सर्वशक्तिशाली स्थिति के कारण राजनीति के लिए अप्रासंगिक थे। जाति राजनीति की निर्धारक भूमिका से गिरकर उसे प्रभावित करने वाला एक तत्त्व मात्र बन गई है।7 गौरतलब है कि एक जाति के सदस्यों में किसी एक दल को वोट देने की प्रवृति होती है। लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि एक जाति के सभी सदस्य एक ही दल को वोट देते हैं। मतदाताओं की वोट देने की प्रवृति को प्रभावित करने में दूसरे कई कारकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उम्मीदवार का व्यक्तिगत, विकास का मसला, राजनीतिक दल का एजेंडा आदि ऐसे कारकों के उदाहरण हैं।

इसलिए राजनीति का तथाकथित जातिवाद, जातियों का राजनीतिकरण है। सत्ता के स्त्रोत के रूप में जाति ने पदसोपान पर आधारित वर्चस्व को तोड़ा है और सभी जातियों को सत्ता की आकांक्षा करने वाले प्रतियोगी क्षैतिज समूहों में बदल दिया है। यह जाति के सेकुलरीकरण का महत्वपूर्ण आयाम है। जाति का कर्मकांडों से मुक्त होना जाति के सेकुलरीकरण का दूसरा महत्वपूर्ण आयाम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डब्ल्यू.एच.मॉरिस जोन्स, द गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स ऑफ इंडिया, हचिनसन यूनिवर्सिटी, लंदन, 1964, पृ.65.
2. लोयड आई, रूडोल्फ और सुजेन एच. रुडोल्फ, द मॉडर्निटी ऑफ ट्रेडिशन : पॉलिटिकल डेवलपमेंट इन इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1967, पृ.12.
3. अभय कुमार दुबे, राजनीति की किताबः रजनी कोठारी का कृतित्व, वाणी प्रकाशन, सीएसडीएस, नई दिल्ली, 2003, पृ.192–193.
4. वही, पृ.197.
5. वही, पृ.192–93.
6. अभय कुमार दुबे, राजनीति की किताबः पूर्वउद्धृत, पृ.192–93.
7. अभय कुमार दुबे, राजनीति की किताबः पूर्वउद्धृत, पृ.216.

*****